मनुष्य बनो

मा० मू
१०-०

2/1984

शरणागति,

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

क

याल फकीर चन्दजी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचा सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। म बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और सा रण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थ दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक क होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जबाबी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पीं० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य १०—०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अङ्क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेज के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ सा लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

प्रकाशक

R. S.

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष ३३	साह संवत २०४० वि०	अङ्क ५

प्रार्थना

दीन बन्धु दयाल स्वामी, तुम दया के सिन्ध ।
निज दया से बन्ध काटो छूटे द्वन्द का बन्ध ॥

काल करम का कड़ा बन्धन, जी रहे लपटाय ।
विधि न जाने छूटने की, उरझ उरझ फँसाय ॥

दया कीजे भक्ति दीजे, तार लीजे आप ।
पुण्डय फल तुम्हरे दरश, कटै जग के पाप ॥

सुरत शब्द का योग निर्मल, सहज सुगम सुहेल ।
जीव पावें परम पद को, चित चरन से मेल ॥

राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी नाम ।
सब जपें हित चित से निस दिन, पावें अमृत धाम ॥

× ×

पंचम सन्देश

मनुष्य में सब कुछ है

१—मनुष्य स्वम् देह, मन और आत्मा का संयोग है।

इसकी देह इसके अस्तित्व का श्रेष्ठ प्रमाण है। इसकी देह स्वयं इसके होने की घोषणा करती रहती है। इसके अस्तित्व या हैंपने को सावित करने के लिये किसी तर्क-वितर्क या दार्शनिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। वह है। उसकी देह क्षण-क्षण उसके 'हैपने, या अस्तित्व का विश्वास दिलाने को काफ़ी है।

मनुष्य का मन इसके सोच समझ, बुद्धि ओर विवेक का उच्च प्रमाण है और उसका मन स्वयं उसके बुद्धिमान होने की हर समय घोषणा किया करता है। वह बुद्धि और मन की सृष्टि है। इसके साबित करने के लिये किसी तर्क-वितर्क या दार्शनिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। वह सोच समझ वाला है। यह स्वय मानसिक सृष्टि के होने का विश्वास दिलाने को काफ़ी है।

इसकी आत्मा उसके आनन्द और आनन्द प्रिय होने का उच्चकोटि का प्रमाण है। उसका आनन्द उसके आत्मस्वरुप होने की स्वयं घोषणा करता रहता है। इसके भी साबित करने की किसी तर्क या युक्ति या दार्शनिक (फ़िलोसफी) प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वह आनन्द वाला है।

२— देह अस्तित्व (सत) का प्रगट करने वाला है और प्रगट होने का स्थान है।

मन, बुद्धि और विवेक को प्रगट करने का स्थान है और प्रगट करने वाला है।

आत्मा आनन्द का जौहर (सार तत्व) है।

३—मनुष्य की बनावट से आप प्रगट है कि मनुष्य में सत, (अस्तित्व) चित व आनन्द तीनों ही हैं। यदि थोड़ा आगे बढ़कर सोचोगे तो तुमको

स्वयं विश्वासपूर्वक ज्ञात हो जायगा कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही सत-चित आनन्द है। इसमें यह तीनों जौहर (सार तत्व) मोजूद हैं जो कभी उससे अलग-थलग नहीं किये जा सकते। यदि किसी में साहस और शक्ति हो तो वह अलग कर दिखावे, मगर यह असम्भव है।

४— मनुष्य क्या है ? तीन में एक और एक में तीन, और तीनों इसमें इस प्रकार मिले जुले और रले-गुथे हुये हैं कि एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता और न अलग करके दिखाया जा सकता है।

जहाँ 'हैपना' (सत) है वहाँ ज्ञान और आनन्द अवश्य उसके साथ रहेगा, वर्ना हैपने' का ज्ञान और भान कैसे होगा और बिना ज्ञान और भान के तुम 'हैपने' को हैपना कैसे और किस मुंह से कहोगे या कह सकोगे।

जहाँ ज्ञान है वहाँ 'हैपना' और आनन्द अवश्य है वर्ना इस ज्ञान और इसकी समझ कहाँ और किस में रहेगी। बिना समझ के तुम ज्ञान को ज्ञान किस मुंह से कहोगे और कह सकोगे।

जहाँ आनन्द है वहाँ ज्ञान और 'हैपना' (सत) कैसे न रहेगा, वर्ना इस आनन्द का प्राकटयय किस पर और कैसे होगा। बिना प्रगट किये तुम आनन्द को आनन्द कैसे और किस मुख से कहोगे और कह सकोगे।

थोड़ा ध्यान दो तो अभी सुगमता से इसका पता लग जाये। इस लिये मैं मनुष्य को तीन में एक व एक में तीन की सम्मिलित अवस्था कहता हूँ।

इस रली मिली गुथी हुई और सम्मिलित अवस्था वाली सृष्टि को हिन्दू शास्त्र सच्चिदानन्द अर्थात् सत चित आनन्द कहते हैं। सत-हैपना है, चित ज्ञान है और आनन्द खुशी है।

एक में हैं तीन और तीनों में एक।
तीनों मिलकर देख लो कैसे हैं एक॥
तुम खुशी हो, तुम में रहता है सरुर।

है तुम्हारी जात से इसका जहूर ।।
तुम हो हस्ती और हस्ती जात है ।
हस्ती समझो हस्ती सच्ची बात है ।
इल्म तुम हो तुम में है अक्ल बोतमीज ।
कब हुये तुम अक्ल से खाली अजीज ।।
सच्चिदानन्दम् अखंडम् केवलम् ।
तुमको क्यों किस बात का है रंज वो गम ।।
जात को अपनी जरा पहचान लो ।
खुश रहोगे इसको दिल से मान लो
जो है तुम में वह तुम्हारी जान है
तुम में सत आनन्द तुम में ज्ञान है
अस्ल को अपने कभी जाना नहीं
जात क्या है इसको पहचाना नहीं
मारे-मारे फिर रहे हो क्यों भला
सुहबते मुरशिद में लो जाकर पता

तृतीय भाग

प्रथम संदेश
अपने आपे का अध्ययन

पढ़ते हो और पढ़ के तुमने क्या किया ।
अपने आपे का नहीं पाया पता ।१।
तुम हो क्या अपनी समझ आई नहीं ।
है यही अज्ञानता इसमें दानाई नहीं ।२।
इल्म है दुनिया की सारी बात का ।
इल्म लेकिन कुछ नहीं है जात का ।३।

लाख बातों का है जौहर एक बात ।
सारे इल्मों से है बहतर इल्म जात ॥४॥
यह हकीकी इल्म बाकी जहल है ।
अस्ल है यह बाकी सब कुल नक्ल है ॥५॥
कौन हो तुम ? कौन हो तुम ? कौन तुम ?
किस लिये नादानी में रहते हो गुम ॥६॥
जान लो आपे को तब यह ज्ञान है ।
अपने को जाना नहीं अज्ञान है ॥७॥

दूसरा सन्देश

इन्द्रियों की त्रिपुटी

——०::——

१ - देह के यन्त्र दस हैं ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और ५ कर्मेन्द्रियाँ । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, त्वचा और जिभ्या(रसना) हैं ।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पाँव, जिभ्या (वाणी), गुदा और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) हैं । इनका सम्बन्ध कर्म से है जो केवल शरीर का है ।

२-दिल (अन्तःकरण) के ४ यन्त्र हैं—चित (चिन्तन करने वाला यन्त्र), मन (मनन करने वाला यन्त्र), बुद्धि (विवेक और निर्णय का यन्त्र) और अहंकार (अभियान का यन्त्र) अ इनका सम्बन्ध बुद्धि, समझ, विवेक से है । ज्ञान इसका गुण है ।

३ —रुह (आत्मा) का यन्त्र सुरति या तवज्जह है । उसका गुण यकसुई और यकरुखी है ।

४—देह सत (हस्ती) है । मन (दिल) बुद्धि और विद्या है । आत्मा (रुह) आनन्द या खुशी है । कर्म देह से होते हैं । विवेक

मन (दल) से होता है और खुशी या आनन्द आत्मा से है। इस प्रकार देह मन और आत्मा अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते रहते हैं।

५—यदि देह, मन और आत्मा तीनों में परस्पर मेल है तब तो जीवन सुखमय होता है। यदि तीनों में मेल नहीं है तो जीवन सुखमय हो जाता है। जिसकी समझ में यह नियम आ गया वह दुनियाँ में अध्यात्मिक दृष्टिकोण से सफल होता है और जिसकी बुद्धि में यह नहीं बैठा वह अध्यात्मिक दृष्टि से असफल होता है।

६—शारीरिक अभ्यास या व्यायाम करने वाला पहलवान होता है और सैकड़ों में आदरणीय समझा जाता है।

बुद्धि से सम्बन्धित कामों का अभ्यासी युक्तिवान बुद्धिमान और विवेकी होता है। हजारों पर उसका सिक्का बैठा रहता है और वह प्रभावशाली समझा जाता है।

आत्म-ज्ञान के अभ्यासी का लाखों पर प्रभाव होता है। सब उसका मान करते हैं और वह हर समय आनन्द में रहता है।

यों तो ये सब हर समय रले-मिले काम करते रहते हैं परन्तु जब तक तीनों में जाने या अनजाने पारस्परिक सम्बन्ध रहता है तब तक काम बड़ी सुन्दरता से होता रहता है और जीवन भव्य (शानदार) रहता है। यदि कहीं इनमें भेद भाव आ गया तो परिणाम उल्टा होने लगता है। इन तीनों के मेल-मिलाप ही में अन्तरीय सार भेद छिपा रहता है।

लेकिन इन तीनों की तीन अवस्थाएं, तीन दशायें अथवा तीन स्थान हैं जिनमें उनके गुण प्रत्यक्ष रुप में प्रगट होते हैं। आत्मिक ज्ञान के विद्यार्थी को इनका जानना अत्यन्त आवश्यक है

देह कर्म करने की अवस्था को जागृत कहते हैं। इस अवस्था में रहकर देह की इन्द्रियाँ काम करती हैं। इनके छिद्रों के मुह बाहर की ओर खुले रहते हैं। नेत्र बाहर को ओर खुले हुये देखते

हैं। कान बाहर की ओर खुले हुये सुनते हैं। हाथ पाँव, नासिका और जिभ्या आदि बाहर की ओर खुले हुये काम करते हैं।

यह जीवन का प्रगट या इन्द्रियलोक कहलाता है। मन की आन्तरिक कल्पनाओं की अवस्था को स्वप्न कहते हैं। इस अवस्था में रहकर आन्तरिक इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं। इनका रुझान अन्तर की ओर खुल जाता है। इनका प्रभाव जागने पर वाह्य इन्द्रियों पर आता है। यह जीवन का अन्तरीय लोक है।

आत्मा के आत्मिक लोक को सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था में रहकर आत्मा का हथियार सुरति (तवज्जह) काम करता है। इसमें निमग्नता (गहरी निद्रा) ध्यान और समाधि रहते है। रुख अन्तर के अन्तर में खुल जाता हैऔर इरका साधन अन्तर के अन्तर में होता है। फिर इसका प्रभाव पहिले अन्तः करण पर सोते समय आता है और जागने पर इन्द्रियों पर आता है।

८— देह, मन और आत्मा के व्यवहार का यह वर्णन है। यह परस्पर इस प्रकार मिले जुले रहते हैं कि एक को दूसरे से अलग करना न सहज है न हर एक का काम है।

९— देह में कर्म, अन्तःकरण में बुद्धि और आत्मा में आनन्द रहता है।

१०—आनन्द तो शारीरिक व्यवहार और अन्तःकरण के बुद्धि सम्बन्धी आविष्कार दोनों में है लेकिन इसका अपना निजी विशेष स्थान है।

जो आत्मा से अधिक सम्बन्ध रखता है वह अध्यात्मिक मनुष्य कहलाता है और सबसे अधिक आनन्द उसीं के हिस्से में आता है।

—:०:—

तुम देखते हो कि काम करते हुये हाथ-पाँव सुन्न हो जाते हैं और सोचते सोचते मन भी थक जाता, उकता जाता, और घबरा जाता है। उस समय सुषुप्ति में जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

यदि उसमें सुख-चैन व शान्ति की दशा न होती तो कौन इस ओर रुझान करने लगा था! तुम थक थकाकर कह उठते हो कि अब थोड़ा विश्राम लेलें और फिर काम करें। सुषुप्ति के कुण्ड में जाकर जब इन्द्रियाँ और मन थोड़ी देर के लिये डुबकी लगा जाते हैं तो नवीन शक्ति आजाती है और आन्तरिक आनन्द उन्हें नवीन जीवन प्रदान करता है।

११—क्या गहरी नींद में जाकर तुम स्वीकार नहीं करते कि इस दशा में तुम आनन्द में थे। लोक परलोक की चिन्ता नहीं थी। तुम्हारा यह मान लेना ही इस आनन्द का श्रेष्ठ प्रमाण है और अधिक प्रमाण क्या दिया जाय।

—:o:—

तृतीय सन्देश

सत, चित, आनन्द की खोज अपने अन्तर में हो।

१—सत या जीवन कहाँ है? हमारे अन्तर में है। ज्ञान और विवेक कहाँ है? हमारे अन्दर है। आनन्द कहाँ है? हमारे अन्तर में है।

२—जब हम कोई काम करने लग जाते हैं तो काम करने की शक्ति हमारे अन्दर से निकलकर बाहर प्रगट होती है। तुम देखो हाथ, पाँव आँख, कान आदि इन्द्रियों की शक्ति कहाँ से आती है? हमारे अपने ही अन्दर ही से तो वह आती हैं। इन्हीं शक्तियों के मिले-जुले या एकत्रित जीवन को सत या मिले-जुले अस्तित्व (सत) को जीवन कहते हैं।

३ जब हम किसी बात को सोचने-समझने लगते हैं तो सोचने समझने की शक्ति हमारे अन्दर प्रगट होती है। तुम देखो कि बुद्धि, विवेक, मनन चिन्तन कहाँ रहते हैं। वे हमारे अपने ही अन्दर रहते है। इन बुद्धि विवेक की मिली-जुली या एकत्रित दशा का नाम ज्ञान है।

४ इसी प्रकार जब हम सुख शान्ति की दशा में होते है तो इन सबका अपने अन्दर में अनुभव होता है। बाहर इनका अस्तित्व नहीं है। हमारे अन्तर में है और इन्हीं सुख चैन शान्ति आदि की अवस्था का नाम आनन्द है।

५ असलियत हमारे अन्दर है। बाहर उसका आभास या परिणाम दिखाई देता है। अगर वस्तु अन्तर में न होती तो वाहर किसी प्रकार प्रगट नही हो सकती थी।

६ थोड़ा ध्यान देने से इन सब बातों का स्वत: ही पता लग जाता है।

७ इन सब अबस्थाओं की नापतोल भी हमारे अंतर में है। केवल नापतोल ही क्यों ? इन सब के ठहराव या स्थिति के समस्त केन्द्र भी हमारे अन्दर हैं।

८ जब हम गहरी नींद में सो जाते हैं तो जागने पर यह ज्ञात होता है कि हमारे अन्दर कोई वस्तु है जिसकी धार क्रमश: किसी मुख्य स्थान से उतर कर रग-रग में दौड़ जाती है और फिर जब हम गहरी नींद में जाने लगते हैं तो यह धार हमारे रग-रग से खिच कर फिर हमारे अन्दर सिमटा-सिमटा कर किसी विशेष केन्द्र पर जाकर लय हो जाती है।

९—यह हमारे प्रतिदिन के जीवन की घटना है, जिसको यदि हम चाहें तो अनुभव के साथ प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष के साथ अनुभव कर सकते हैं।

१०—दृष्टान्त रुप से जब हम प्रात: काल को उठते हैं तो हम

देखते हैं कि धार ऊपर की ओर से आई और चोटी से लेकर एड़ी तक नहर के पानी की तरह फैल गई। उसकी शक्ति पाकर हम काम काज में लगे और काम काज करने योग्य बन गये। समस्त इन्द्रियों और रग-रग में यह धार फैली हुई प्रतीत होती है।

११—फिर जब हम रात को सोने के लिये गये तो देखते हैं कि वही धार उलट कर अन्दर चली गई। हाथ पाँव आँख, कान आदि आदि अशक्त होगये। हम खाट पर एक दम पड़े रहे। फिर न हम में काम करने की शक्ति है न हमको समझ बूझ है।

प्रगट रुप से हम शक्तिहीन तो नहीं हो जाते लेकन और तरह पर मुर्दे के समान दिखाई पड़ते हैं।

१२–यह हुआ क्या ? क्यों यह दशा होगई ! कारण यह है कि धार जो आई हुई थी खिच कर किसी स्थान पर लीन व लय हो गई।

१३-आशा है कि तुमने इस भेद को अब कुछ न कुछ समझ लिया होगा।

–:०:–

चतुर्थ सन्देश

विशेश व्याख्या

१ धार कहाँ से आई थी और कहाँ को चली गई, अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है। इसका उत्तर वर्णन में आने से कम चित्ता कर्षक न होगा।

२ जागृत के समय देह और इन्द्रियों में धार फैली हुई थी जिसकी शक्ति से हम काम कर रहे थे। अब वह सिमट कर कहीं को चली गई। कहाँ को गई !

३ चूंकि हमारे देह और इन्द्रियों के काम के अन्दर समझ बूझ की योग्यता मौजूद थी और इसके कारण हम नपा तुला काम कर रहे थे। धार इस समझ बूझ में जाकर विलीन हुई। यह सारभौम नियम है कि प्रत्येक वस्तु की अपने मूल की ओर प्रवृत्ति रहती है।

४ समझ बूझ का सम्बन्ध मन से है, यह उसी का गुण है। वह असल वस्तु थी और यह उसकी फैली हुई अवस्था थी। वह उसकी ओर लौट गई और इसमें मिलकर इससे एक हो रही है। आँख की ज्योति, कान की श्रवण शक्ति, चर्म की स्पर्श शक्ति, जिभ्या की रसना शक्ति, नाक की सूँघने की शक्ति मन में जाकर लीन हो गई।

५ जागृत के समय यह धार इन्द्रियों में थी। अब सोते समय वह मन की स्वप्नावस्था में विलीन हो गई। मन स्वप्न देखने वाला, स्वप्नासक्त और स्वप्न में रहने वाला तत्व है। स्वप्न और कल्पना दोनों एक हैं। कल्पना की दशा स्वप्न है। स्वपना वस्था में मन स्वप्न देखता है और अन्दर ही अन्दर कल्पनायें किया करता है।

६ इन्द्रियों का केन्द्र शरीर था। स्वप्न और कल्पनाओं का केन्द्र मन है। इन्द्रियों की यद्यपि प्रत्यक्ष में मृत्यु हो गई, लेकिन वह मरी नहीं। मरी होती तो उनका पता नहीं लगता। जैसे जागृत में इन्द्रिया देखती, सुनती, चलती, सूँघती और स्पर्श करती थीं, अब भी स्वप्न की दशा में यह सब की सब मौजूद हैं मन अपने अन्दर ही अन्दर वही काम कल्पना के आधार पर कर रहा है। केवल दशा अवश्य बदल गई। पहले वह स्थूल रुप में काम करती थी, अब उनका सूक्ष्म रुप बन गया। मन कल्पना द्वारा उन्हें उत्पन्न कर लेता है। इनसे काम लेता है और साथ ही कल्पना और सोच समझ में सूक्ष्मता आ गई है। इस मन

का केन्द्र अन्तर में है । इन्द्रियों का लोक वाह्य था, मन का लोक अंतरीय है ।

७—यहाँ ध्यान देने पर कुछ पता चलता है कि जो अन्दर था वही बाहर आया हुआ था । जो इल्म या ज्ञान था वही अमल या साधन बन गया था । जो स्वप्न और कल्पना थी वही घटना हो गई थी ।

८—यह मन ही था जो इन्द्रियों में समाया हुआ था । इन्द्रियों का केन्द्र देह था और ज्ञान अथवा बुद्धि का केन्द्र मन (अंतःकरण है ।

९—किसी पाठशाला के विद्यार्थी को गणित का कोई प्रश्न दे दो जहाँ वह सोचने लगा, आँखें बन्द हो गई । वह अमल या क्रिया रूप से स्वप्न में चला गया । अनजाने इसकी बुद्धि धारों के चक्र पर पहुच गई । इस बुद्धि की धार ने अंतः करण को छू लिया उत्तर की कुन्जी इसके हाथ लग गई और आँखें खोलकर उसने प्रश्न का उत्तर बता दिया । यह साधारण दृष्टान्त भी इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालता है ।

१०—प्रायः जो बातें जागृत की दशा में नहीं समझ में आती, सो जाने पर उनके स्वप्न देखने पर समझ में आ जाती है ।

११—घटनाओं की दुनिया देह है और कल्पनाओं की दुनिया मन (अन्तःकरण) है । यह दो दुनिया हैं । जिनमें वाह्य और अन्तर का भेद है और इनके समझ लेने से लोक परलोक की दशा समझ में आ जाती है ।

१२—दो बातें हो चुकी, देह और मन की । अब आत्मा की ओर ध्यान देंगे ।

—:०:—

पंचम संदेश

विशेष व्याख्या (लगातार)

१ बाहर अर्थात जाग्रत का भेद खोल दिया और अंतर अर्थात् स्वप्नावस्था का भेद खोला गया। देह का हाल बता दिया गया और मन का हाल सुना दिया गया। सत का पता मिल गया और ज्ञान की सचाई खुल गई। अब रह गया आनन्द, इसका भी स्वरूप सुनो।

२ यह मन ही है जो अन्दर बाहर, जाग्रत और स्वप्न में काम करता है। जागृत के समय इसकी बैठक इन्द्रियों पर ही नहीं बल्कि देह के रोम-रोम पर रहती है। स्वप्न की अवस्था में वह अपने विशेष स्थान पर बैठता है अर्थात् मन अपने में प्रवेश करके कल्पनाओं की उधेड़-बुन या स्वप्न के ताने बाने तनता है

३ साथ ही यह मन ही है जो ऊपर आत्मा की ओर प्रवृत होता है। इस आत्मा का स्बभाव (ख़ास्ता) सुरति है और मन सुरति से नाता जोड़कर और उनके साथ संयुक्त होकर दूध और चीनी की तरह एक हो जाता है और सुरति के साथ मन का एक हो जाना ही आनन्द है।

४ मन का यह स्वभाव है कि जिससे सम्बन्ध पैदा करता है उसी का रंग रूप ग्रहण कर लेता है। नहर का पानी अगर खेत की क्यारियों में फैलेगा तो क्यारियों की शक्ल का दिखाई देगा नहर का पानी यदि दो क्यारियों वाले खेत में जायेगा ता दो क्यारियों वाले खेत का रूप धारण करेगा। यदि वह किसी गोल और गहरे गड्ढे में पड़ेगा तो गोलाकार दिखाई देगा।

५ मन मध्य में है। उसके नीचे देह है और उसके ऊपर आत्मा है। देह और आत्मा के मध्य में होने के कारण वह दोनो से प्रभावित है। वह दुहरी रंगत इस मन की अपनी विशेषता है।

देह की विशेषता नीची, आत्मा की ऊंची और मन की बीच की है।

देह में अनेक पना है।
आत्मा में एक पना है।
मन में दो पना है।

६ देह के विषय में तुम्हें ज्ञात है कि उसमें बहुत से अंग हैं। एड़ी से लेकर चोटी तक इस देह में असंख्य छिद्र हैं और मन इन सबका अपनी शक्ति और प्रभाव दे-देकर गति मान रखता है। देह में अंगों की अनेकता के कारण नीचे अर्थात् देह में उतरने पर उसको अनेकता या बहुतायत में प्रीति होने के साथ साथ हर बात में कमी प्रतीत होती है।

आत्मा के विषय में तुम्हें समझा दिया गया कि उसमें सुरति है और सुरति का स्वभाव यकसुई, एकाग्रता और एकता है। जब मन का ध्यान और रुझान सुरति की ओर होता है तो आत्मा के एकपने (एकत्व) के प्रभाव से उसमें यकजहती (एकपना) आ जाता है और वह अपने को उसी प्रकार रूहानी या आत्मिक समझने लगता है जैसे लोहा आग में पड़कर लाल और गर्म अर्थात् अग्नि रूप हो जाता है।

मन के विषय में तुम्हें ज्ञान हो गया कि इसमें आत्मा और देह दोनों के प्रभाव रहते हैं। इन दो प्रकार के प्रभाव रखने के कारण मन द्वन्द्व बन जाता है।

७ आत्मा से मिलकर यह मन अद्वैत या एकत्व प्रिय बन जाता है। यह इसके अद्वैतप्रिय होने की शान है बड़प्पन है जिसको एकत्ववाद कहते हैं। इस दशा में वह पूर्ण बन जाता है।

देह से मिलकर यही अनेक प्रियता के दृष्य देखने और दिखाने लगता है जिसका परिणाम न्यूनता और परिमितता है। वह त्रुटि पूर्ण और दोषयुक्त हो जाती है। यह इस मन का

अनेक वाद है।

मन मन से मिलकर आत्मा और देह के प्रभाव रखने के कारण अपने आप दो गुण वाला हो जाता है। यह इस मन का द्वन्दवाद है।

८ तुमको अद्वैत, द्वैत और अनेकता का भी लगे हाथों पता लग गया। अब चाहे तुम अद्वतवादी बनो अथवा अनेकवादी बनो। यह सब के सब मन ही के खेल हैं। इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह एक में तीन और तीन में एक होकर एक का गीत गाते हैं। ये मिल जुलकर सत-चित-आनन्द कहलाते हैं जिसकी बावत तुमको पहले भी समझा दिया गया

नोट--एक उर्दू की कविता का भी भावार्थ इस प्रकार है:--

"यह मन ही है जो विभिन्न आकृतियों के बनाने वाला है। कभी तो यह मन मनुष्य बन जाता है, कभी पशु और कभी देवता। अगर यह देहासक्त हो जाता है तो स्थूल हो जाता है और यदि अपने आप में ठहरा रहे तो बुद्धिमान हो जाता है, और कभी पवित्र, ज्ञानवान और निर्भय हो जाता है और कभी भयभीत हो जाता है।

जब मन की दृष्टि आत्मा की ओर होती है तब इसकी दुनियाँ के भेद-भाव की दृष्टि निकल जातो है। यह मन ही समझने की वस्तु है, यदि यह समझ में आ जाय तो बहुत बोध हो जाता है। यह मन ही है जिसमें ईश्वर के रहने का स्थान है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि मन में ही ईश्वर का निवास है। मन यदि धर्म परायण है तो उसका आत्म दर्शन हो जाता है और यदि दुनिया की ओर इसका रुझान है तो दुनियादार बन जाता है। जब यह मन ब्रह्म से मिल जाता है तो यह स्वयम् ब्रह्म हो जाता है और जब यह माया के प्रपंच में फँस जाता तो फिर माया को ही अपना ईश्वर मान लेता है।

दूसरों के मन को अपने मन में मिलाने का मार्ग मन के द्वारा है। जिसको इस मन का भेद मिल जाता है वही बुद्धिमान समझा जाता है।

यह मन ब्रह्म से मिलकर ब्रह्म का पुजारी होता है और जब माया से मिलता है तो माया का पुजारी हो जाता है। यह मन ही पतित हो जाता है और मन ही शुद्धि होकर आत्मा हो जाता है। मन ही अपूर्णता है और मन ही पूर्णता है इसलिये इस मन के असली रूप को समझो।

यह मन समझन जोग साधो ! यह मन समझन जोग ।।
मन ही ज्ञान और मन ही ध्यान है, मन ही मोक्ष और भोग ।।
मन में वेद को पढ़ते ब्रह्मा, शंकर करते योग ।।
मन ही अन्दर सृष्टि व्यापी, मन ही में है रोग ।।
मन गोविन्द मन गोरख रूपा, मन ही योग वियोग ।।
मन ही पानी मन ही अग्नि है, मन ही आनन्द सोग ।।
मन ही गुरु है मन ही चेला, मन ही ब्रह्म संयोग ।।
मन ही का व्यवहार जगत में, नाही जाने लोग ।।

—:०:—

आत्मा से मन की एकता होने में आनन्द है, मन का अपने में रहने में बुद्धि और विवेक का बढ़ना है और मन की आसक्ति देह में होने में हमारा दुनियादारी का जीवन है।

१२ देह से एकांग होकर रहने में दुख और व्याकुलता है। मन का मन से एकाँग होकर रहने में द्वन्द के कष्टों का पग-पग पर भय है। केवल आत्मा के सम्मेलन में आनन्द है।

१३ ऊपर के सन्देश को पढ़कर कोई व्यक्ति यह परिणाम न निकाले कि हम सब को सुषुप्ति अर्थात् गहरी निद्रा में डूबे रहने और अचेतन्य और सुस्त होने की सलाह दे रहे है। प्रकृति की व्यवस्था में न तो इसका प्रबन्ध है और न इससे कोई लाभ

है। इन तीनों अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है। हमारा उद्देश्य यह है कि विश्वस्त उपायों और क्रियात्मक (अमली) ढंगों से देह और मन को आत्मिक बना लिया जावे। देह, मन और आत्मा में अभ्यास और साधन से समानता पैदा करली जाय और वह अपने अधिकार में हो। अधिकार से बाहर न हो क्यों कि हम प्रतिदिन बेबसी की दशा में जाग्रत, स्वप्न और शुषुप्ति के खेल देखते और करते रहते हैं। इससे हमारा जोवन न तो आनन्ददायक होता है और न पूर्ण आनन्द हमको प्राप्त होता है।

१४ जिस मार्ग की शिक्षा राधास्वामी मत देता है यदि नियम-पूर्वक उस पर चला जाय तो जीवन शानदार और आनन्ददायक हो जाय। भू-लोक पर रहते हुये हमारा दुनियावी जीवन ऊचा और आत्मिक बन जाय। दुख पूर्णतया विनाश हो जाय और नित्य और स्वतन्त्र आनन्द हमको मिल जाय। क्या यह परमेश्वर की देन और कृपा नहीं है ?

१५ साधन आसान है शीघ्र समझ में आने वाला, शीघ्र हो जाने वाला और शीघ्र प्रभावित करने वाला है। बूढ़ा, जवान, स्त्री पुरुष सब इसका अभ्यास किसी शारीरिक डर भय तथा मानसिक अशंका और संशय के बिना कर सकते हैं। इसके लिये जैसे दूनियावो व्यबहार व्यापार को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है, वैसे ही मजहब छोड़ने और धर्म बदलने का आदेश नहीं है। इस आत्मिक शिक्षा का अधिकार हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी पारसी, जैनी, बौद्ध आदि सबको है। धर्म और पंथ का भेद भाव नहीं किया जाता। इस साधन व अभ्यास के विषय में हम अगले भाग में वर्णन करेंगे।

———

प्रथम सन्देश

साधन और अभ्यास

—:o:—

१ दुःख क्या है ? सुख क्या है ? और सुख-दुःख कैसे होता है ? सुरत का किसी जमाव या टिकाव के केन्द्र पर ठहर कर स्थिर हो रहना सुख है । सुख आनन्द दायक अवस्था है ।

सुरत का किसी जमाव या टिकाव के केन्द्र से बलात् उखेड़ देना दुख है । यह दुःखदाई अवस्था है ।

सुरत के जमने से सुख और सुरत के बलात् या जोर के साथ उखाड़ देने से दुःख होता है

दुःख और सुख में सुरत के बिखरने और मिलकर एक होने में इसकी असलियत का भेद छिपा हुआ है ।

२ इसका कारण तुमको ज्ञात होना चाहिये । तुम सत् चित और आनन्द हो । सत् का स्वभाव है फैलाना व बढ़ाना । बढ़ने और होने अथवा फैलने का गुण इसमें है । सत् में गति है । चित का स्वभाव है सिकुड़ कर अपने अन्तर में सोचने-समझने का, और आनन्द का स्वभाव है सिमट कर एकत्र हो रहने का ।

३ देह, मन और आत्मा की अपेक्षा से सत् चित और आनन्द कहा है । देह में व्यक्त होने तथा फैलाव का सामान है । यह तुम अपनी इच्छा के गतिमान होने पर देखते हो । मन में गति व स्थिरता दोनों हैं । आत्मा में ठहराव अथवा स्थिरता का गुण है और इसी स्थिरताई अवस्था का नाम आनन्द है । इस पर सोच विचार करने की आदत डालो तब सरलता से समझ सकोगे ।

४ राधास्वामी मत में यह तीनों बातें तीन यन्त्रों की दृष्टि से

है। देह या इन्द्रियाँ (इंद्रिय संयुक्त) गति या हरकत करने की आदी हैं। मन या बुद्धि तथा विवेक (अन्तःकरण संयुक्त) गतिमान और स्थिर दोनों है और आत्मा या तवज्जह (सुरत संयुक्त स्थिरता का आदी है। आनन्द इस स्थिरता का परिणाम है।

५—सुरत संस्कृत शब्द सु-रत, सु-वासना, सु-इच्छा का समानार्थ (पर्यायी) शब्द है। इसको उर्दू में तवज्जह कहते है और इस तवज्जह में सुरत, सुवास, सुभास अथवा सुइच्छा है। सु के अर्थ हैं अच्छा और रत (रम) के अर्थ हैं खेलना। जो अच्छे खेल वाली हो उसे सुरत कहते हैं।

यह सुरत का पहला गुण है और जब वह खेल (रत या-रम) के साथ मिलकर सुख तथा शांति की दशा में आकर स्थिर होकर चुप हो रहती है तो उसका नाम 'निरत' (संस्कृत-नि = नहीं और रत या रम = खेल) है। सुरत का लटकाव, सिमटाव और एक होने की शक्ति को निरत कहते हैं। राधास्वामी मत में साधन और अभ्यास की दृष्टि से इन दोनों शब्दों की अधिकता के साथ प्रयोग किया गया है और इन दोनों शब्दों के अर्थ की समझ आने से राधास्वामी मत की समझ आ जाती है।

दूसरा सन्देश

सुरत (सु–रम या) का खेल

१—सुरत का खेल खुशी है। यह सुरत (व्यक्ति की) चोटी पर है। बीच में मन है और नीचे देह है। उसी की धार पहले मन में आती है फिर मन से नीचे शरीर के अन्गों, इन्द्रियों और रग रग तथा छिद्र-छिद्र में नियमित रुप से आती जाती है।

२—इस (धार) के केन्द्र पर जमकर टिकने और एक होने का

नाम खुशी (आनन्द) है। इसके केन्द्र से जोर से हटाये जाने का नाम दुःख है। यह बार-बार समझा दिया गया। अब दृष्टान्त द्वारा समझो—

३—तुम चौसर, शतरंज या ताश खेल रहे हो। सुरत खेल में लगी हुई है। तवज्जह का कुल आकर्षण खेल पर है और तुम खुश हो। तुमको सुख मिल रहा है। यदि कोई व्यक्ति आये, चौसर और शतरंज की बिसात उलट दे अथवा ताश को छीन बखेर दे। सुरत बलपूर्वक हटाई गई। परिणाम दुःख हुआ।

४—सुरत की धार मस्तिष्क से उतर कर शरीर के हाथ पाँव आदि में केन्द्र बना-बनाकर इकट्ठी हो रही थी, तुमको सुख मिल रहा था। चाकू या छूरी से घाव हो गया। धार आती है। काट या घाव के कारण उसे विवश होकर बार-बार हटना पड़ता है। वह केन्द्र पर स्थिर नहीं होने पाती और तुमको दर्द व दुःख होता है।

५—मस्तिष्क से सुरत की धार जठराग्नि में ठहर कर पाचन-शक्ति को बल देती है। तुमने गलती से कोई हानिकारक वस्तु खाली। वह विजातीय मल बनकर रुकावट का कारण होगी। आती हुई धार उस बीच में आई हुई वस्तु के कारण बार-बार हटाई जा रही है और तुमको पेट का दर्द हो गया। अपच और कब्ज की बीमारी हो गई।

६—आँख, नाक, कान, सिर, माथे के दर्द में भी यही धार की रुकावट का नियम काम करता है। सब रोगों की जड़ इसी में है।

७—तुम सो गये। स्वप्न देखने लगे। अच्छे स्वप्न में सुरत जमी हुई है। सुख हो रहा है। कोई बुरा स्वप्न देखा अथवा तुम्हारा हाथ छाती पर पड़कर धार की रुकावट का कारण बन गया और तुम दुःखी हो गये।

८—धार नियम पूर्वक चलने लगे, यही दवा है। दवा, चिकित्सा सब सुरत के नियमित होने से होती है और यह दवा इलाज जो वैद्य, हकीम करते हैं केवल सुरत के रुझान को बदलने की दृष्टि से है ।

९—किसी मनुष्य के मन में कोई भ्रम, भ्रान्ति या भूत के भ्रम का विचार समा गया। सुरत की धार रुकी। उसमें बेकायदगी आ गई। मस्तिष्क विगड़ गया। ऐसे अवसर पर दक्ष वैद्य भ्रम का इलाज दूसरे भ्रम से करते हैं। भ्रम का चला जाना सुख है। भ्रम का आना दुख है।

१०—तुम घर में बैठे हुये किसी कारण उदास थे। बाग में गये। फल, फूल, बेल, बुटे, रौस व क्यारियों को देखकर खुश हो गये, क्योंकि सुरत ठहर गई थी। खुशी बाग के दृष्य और तमाशों में नहीं थी। अभी कोई भयानक या दर्द भरी सूचना मिली। सुरत को झटका पहुचा। वह वकायक हटाई गई, दुःख हो गया। अब बाग काटे खाता है अब वहाँ खुशी दृष्टिगोचर नहीं आती। अगर इसमें खुशी होती तो तुम फिर भी खुश होते मगर खुशी तो तुम्हारे सुरत में थी।

११ गाना बजाना हो रहा है। सुरत ठहरी हुई है और तुम खेश हो। किसी सम्बन्धी की बीमारी या मृत्यु का तार आ गया सुरत हटई गई और तुम दुःखी हो गये।

१२—तुम मिठाई व पकवान शौक से खा रहे हो। सुरत ठहरी हुई है। खुश हो। कोई अप्रिय घटना सुनी, सुरत अपने केन्द्र से हटाई गई और तुम दुःखी हो गये।

१३—इस प्रकार के और हजारों दृष्टान्त तुम स्वयम् सोचकर अपने लिये सुख दुःख के नतीजे निकाल सकते हो। हम अधिक क्या कहें।

—:०:—

तीसरा सन्देश

इन्द्रियों व मन के व्यवहार में सुख-दुख

१ - मनुष्य समझता है कि इन्द्रियों में स्वाद लेने की शक्ति है। यह नहीं समझता कि शरीर या इन्द्रियाँ शक्तिहीन हैं। उनके अन्दर जो शक्ति है वह मन की शक्ति है। मन में भी सच पूछो तो शक्ति नहीं है। सारी शक्ति सुरत की है और उसी की शक्ति से यह सब शक्तिवान बने हुये हैं।

२—सुरत बढ़ई के मानिन्द है। मन उसका बसूला है और शरीर लकड़ी के तख्ते की तरह है। जैसे बढ़ई हाथ में बसूला लिये हुये लकड़ी के तख्ते की काट-छांट और सफाई किया करता है, उसी तरह सुरत मन के हथियार से शरीर का व्यवहार करती है।

३—तुमने मिठाई खाई, समझा कि जिह्वाने मिठाई का स्वाद लिया। यह गलती है जब तक सुरत की धार केन्द्रित बनकर जिव्हा पर ठहरी रहती है तब ही तक वह नमकीन मीठा, कड़ुवा कसैला, फीका, तीखा, चरपरा आदि सब का रस लेती है। सोते समय धार ऊपर की ओर खिसक गई। तुम सोते हुये मनुष्य की जिव्हा पर मिठाई रखो क्या वह स्वाद ले सकेगी ? नहीं ? स्वाद लेने वाली धार तो अन्तर में चली गई।

४ बेहोशी, नींद या बीमारी में धार ऊपर की ओर भीतर ही भीतर खिच जाती है ओर जिभ्या तब बेकार हो जाती है।

५—यही हाल और सब इन्द्रियों का है ? मैं बात करता हूँ तुम सुनते हो। सुरत को तनिक हटने दो। मानलो अपने घर का ध्यान आ गया। सुरत हटी, अब न तुम खुली हुई आंख से मेरा रूप देख सकोगे, न खुले हुये कान से मेरी बात सुन सकोगे। देखना, सुनना सब सुरत की धार के आधीन था।

६—तुम समझते होगे कि स्वप्न की दशा में मन अपने अन्तर में हर प्रकार के सामान केवल ध्यान से उत्पन्न कर लेता है। इस लिये स्वाद लेने और स्वाद की वस्तु उत्पन्न करने की शक्ति मन में होगी। ऐसा विचार करना भी तुम्हारी भूल होगी।

७—जागृति के पश्चात् इन्द्रियां वन में जाकर लीन हो जाती हैं, वैसे ही स्वप्न में स्वप्न देखने वाला मन भी सुषुप्ति की दशा आते ही सुरत में लीन हो जाता है और उसके स्वप्न विचारों का ताना-बाना बिलकुल बन्द हो जाता है। जैसे जागृति वाली इन्द्रियां स्वप्न में मर गईं वैसे ही स्वप्न वाला मन भी सुषुप्ति में मर गया। अब क्या है केवल सुरत ही सुरत बाकी है और वह अपने केन्द्र पर स्थित है। धार नीचे से खिच कर अन्दर इसमें लय हो गई। वह है। शेष शरीर और मन दोनों मुर्दा पडे हुये हैं।

८—और चूँकि सुरत अपनी धार को समेटे हुये अपने मुख्य केन्द्र पर स्थित है उसके सिमटाव, टिकाव और ठहराव से खुश हो रही है। यहाँ भी वही कानून काम करता है।

९—शारीरिक अथवा शरीर की इन्द्रियों का समूह हर तरह से सीमित और संकुचित है, अतएव सीमित व संकुचित होने के कारण वहाँ सुरत के टिकाव का सुख तो मिलता है लेकिन वह सुख अपूर्ण होता है क्यों कि जिस पदार्थ से शरीर बना हुआ है वह शीघ्रता से बदलता रहता है और स्थूल है। सुरत इससे हटने में विवश रहती है।

१०—मन और मन का अन्तःकरणीय मंडल सीमित और असीमित दोनों हैं। वहाँ सुरत का टिकाव कम भी होता है और अधिक भी होता है। मन यदि चंचल है तो सुरत कम टिकती है। यदि वह निश्चल है तो अधिक देर तक टिकती है। इस लिये इस लोक में दोनों तरह अर्थात न्यूनता से तथा अधिकता से खुशी मिलती है क्यों कि जिस पदार्थ से मन बना हुआ है उसमें शारीरिक पदार्थ की अपेक्षा परिवर्तन उतना शीघ्र नहीं होता। यदि इन्द्रियों का प्रभाव उसमें अधिक हुआ तो उसमें सुख

कम हुआ और यदि अपना प्रभाव अधिक हुआ तो खुशी अधिक हुई।
११=आत्मा का मंडल सीमित है न असीमित है। वहाँ सुरत का टिकाव अधिक होता है इसलिये उसकी खुशी केवल अधिक ही नहीं होती बल्कि पूर्ण होती है। पूर्ण खुशी उसे कहते हैं जिसमें मुहताजगी, कमी और किल्लय का नुक्स न हो। यहाँ का मादा (पदार्थ) इस प्रकार का है कि इसमें परिवर्तन बहुत कम होता है, इसलिये सुरत का टिकाव अधिक होता है और पूर्णानन्द इसका परिणाम होता है। लेकिन इसका पदार्थ भी परिबर्तनशील है। यही कारण है कि सुरत सदा उस पर स्थित नहीं रहती। और उसका उत्थान (उठाव या उतार) होता रहता है। कोई व्यक्ति सदा इस अवस्था में नहीं रहता। न रह सकता है।
१२—इन्द्रियों का मंडल जाग्रत, मन का मंडल स्वप्न और सुरत का मंडल सुषुप्ति है।

—:0:—

अपना अनुभव

कुबेर नाथ श्रीवास्तव

नाम अज्ञान को वैसे ही नष्ट कर देता है जैसे प्रकाश अन्धकार को कर देता है -

जैसे सूरज सारे संसार को प्रकाश देता है वैसे ही नाम सारी श्रष्ठी को चलाय मान रखता है-

जीवन वो मृत हमारे स्वयं के आसरे है हमारे स्वयं पर इन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है- गुरु की कृपा से सुरत शब्द योग द्वारा जो स्वयं को साक्षात कर लेता है बह जीवन वा मृत्यू से मुक्त हो जाता है।

विना शब्द वा प्रकाश में प्रवेश किये स्वयं का साक्षातकार नहीं होता-स्वम् का साक्षात कर लेना ही जीवन मक्त अवस्था है-

यहाँ दुख है वहाँ सुख है जहाँ सुख है वहाँ दुख है जैसे प्रकाश में छाया छिपा हुआ है वैसे ही सुख में दुख और दुख में सुख छिपा रहता है- संसार का कार्य द्वविन्द से चलता है-शब्द व प्रकाश के साधन से निरद्वविन्द अवस्था सत्त लोक में प्रवेश करने पर प्राप्त होती है ।

मालिक पुरण है उसका सब कार्य पुरण है- उस के किसी कार्य में त्रुटी नहीं है जो हो रहा है बिलकुल ठीक हो रहा है-मालिक की मौज पर रहना सीखो ।

मालिक हम में है हम मालिक में है जैसे वायू हम में है और हम वायू में है- वह पुरण है हम अन्श हैं विना अन्श के पुरण नहीं हो सकता अन्श को पुरण से मिलने की लालसा है पुरण को अन्श से मिलाने की चेष्टा है-पुरण को अपने अन्श की रक्षा की सतर्कता वैसे ही है जैसे माता को अपने बालक के रक्षा की सतर्कता रहती है माता का बालक को मारना उसकी भलाई के हेतु होता है ईश्वर का जीव को कष्ट देना जीब की भलाई के हेतु है ईश्वर हम से एक पल भी आचिन्त नही हैं हमको इसका अनुभव करना चाहिये और उस पर अटल विश्वास रखना चाहिये अचिन्त रहना चाहिये ।

जव मैं यह विचार करने लगता हूँ कि मालिक सभी आधार है मैं उसे मिला हुआ हूँ तो थोड़ी देर यह विचार व्यापक रहता है कि मालिक और मुझमें अन्तर है फिर इसके मालिक वो स्वयं दोनों को भूल जाता हूँ भ्रान्ती वा निरभ्रान्ती दोनों मिट जाते हैं यह दशा जव शरीर स्वस्थ रहता है तो प्रगट रहती है मगर जब शरीर अस्वस्थ होता है तो मालिक को अलग समझ कर कष्ट के दूर करने की प्रार्थना करता हूँ ।

कुछ दिनों तक हमको ऐसा प्रतीत होता था कि वह विस्तरीय संसार हमारे रहने हेतू एक नग कारागार है किसी को अपने अनुकूल और किसी को प्रतिकूल पाकर सुखी वा दुखी होता था इस कारण संसार से मुक्त होने की इच्छा करता था मगर जब से सर्वाधार से मिला हुआ

अपने को अनुभव करता हूँ असिमित में प्रवेश कर जाता हूँ सुख़ दुख दोनों को मालिक की मौज समझता हूँ कैसा सुख और कैसा दुख इस के ऊपर जाता हूँ तो यह विचार आता है कि हम को संसार से क्या लेना देना जिसने इस श्रष्टी को प्रगट किया है वह इस की देख भाल करे हमारा करना धरना कहना सुनना व्यर्थ है इन सब बातों के समझते हुये भी करने की धुन रहती है क्यों कि मैं कर्ता का अन्श हूँ और जो करता हूं वह उनका कार्य समझता हूँ।

एक समय मुझको जब याद आया कि दाता दयाल के समय में राधास्वामी धाम से महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, विहार व अन्य प्रान्त के हजारों सतसंगी भंडारे के अवसर पर एकत्रित होते थे देशी शुद्ध घी की पूरी कचौड़ी बनती थी पंजाब के बुवा दत्ता गायक बाबू बांके विहारी के मकान में जो नाले पर स्थित है। दाता दयाल के गजल व शब्द गाते थे समाँ बंध जाता था मस्ती छा जाती थी और अब जहाँ राधास्वामी धाम था वहाँ हल चल रहा है मैं दुखी होकर समाधि में चला गया दाता दयाल साहब प्रगट हुये पूछा कुवेर क्यों दुखी हो मैं ने सब हाल कह सुनाया—दाता दयाल ने कहा बावले जो उपजे सो विनसे जब जरूरत थी मालिक ने प्रगट किया जरूरत पूरी हो गई गुप्त कर दिया-जाओ अपना काम देखो और मौज पर रहा करो-जो हुआ वह अच्छा हुआ।

दाता दयाल ने हमारा जो उपकार किया है इसकी कृतग्यता में उनकी शिक्षा का प्रसार करना चाहता हूँ अधिकारी नही मिलते किसकी खुशामद करू कि हमारी बात सुनो और अपना काम बनावो कबीर साहब कहते हैं।

सैन बैन को जो लखे, वासों कहिये धाय।
सैन बैन जो ना लखे, वासों कहे बलाय॥

जिनमें संकेत के समझाने की क्षमता नही है उनसे रहस्य को कहने में वाद विवाद उत्पन्न हो जायेगा मैं अपना कल्यान कारी वा शुभ भावना

भेजता रहता हू दाता दयाल व परम दयाल की दया से हम को जो कुछ प्राप्त है उससे अधिकारी बनो भोजन, वस्त्र, व औषधि में व्यय करता हूं और अपने रूप में मगन रहता हूँ किसी का आश्रित नहीं हूं।

बने तो सतगुरु, से बने ,नहीं विगड़े भरपूर।
तुलसी बने जो और से , तावनेव पर धूर॥
घरनी जहाँ लग देखियाँ , तहाँ लग सभी भिखारी।
दाता केवल सतगुरु , देत न मा।ने हार॥

दिन प्रतिदिन आयू ज्यों २ कम होती जा रही है शरीर की शक्ति छिन्न होती जारही अब कोई कार्य–कार्य की दृष्टि से नहीं कर सकता सलग्न रहने और दिल वहलाने हेतु करता हूँ दिल में कहने लगा ऐसी दशा रही तो हमारी सम्भाल कौन करेगा या मालिक अपनी गोद में ले चल स्वयं ने पूछा क्या इस अवस्था में तुम मालिक की गोद में नहीं हो–तुम से अभी तक द्वेष नहीं ग।। मैंने कहा मैं किसी से द्वेष नहीं करता–स्वम् ने कहा वह स्थूल द्वेष है सूक्ष्म द्वेष वाकी है जो मालिक के कामों में त्रुटी देख रहे हो मैं स्वस्थ अस्वस्थ जीवन मृत्यु हर अबस्था में तुम्हारे साथ मालिक के रूप में तुम्हारे साथ हूं–तुम्हारे सासों सांस में तुम्हारा निरीक्षक हूँ यहाँ तक वहुत सी आपत्तियाँ जिनसे तुम अनिभिग्य रहते हो आती है उ नमें तुम्हारा सहायता करके तुमको बचा लेता हूँ जब जानकारी होती है तो हमारा धन्यवाद देते हो तुम में सूक्ष्म द्वेष रह गया इसको समझ कर मौज पर रहने की आदत डालो कैसा जीवन व कैसा मरन इनमें अन्तर क्या है जब दोनों का आधार एक ही है। कबीर मन मृतक भया दुखल भया शरीर आगे पीछे हरी फिरें कहत कबीर कबीर।

तुम लाख सम्पन्न हो जब तुम बीमार वा दुखी हो जाते

हो तो क्या तुम्हारी सम्पन्नता तुम्हारे रोग व को दूर कर सकती है तुम लाख निर्धन हो मगर स्वस्थ वा सुखी हो क्या तुम्हारी निर्धनता तुम्हारे स्वास्थ वा सुख में बाधक होती है। इससे समझ लो कि सुख वा दुख का श्रोत एक ही है जो निर्धन व धनी वनाती है वह मनुष्य जिसको इसका साक्षातकार हो गया है उसको संत कहते है तुम उसका खोज करो और उसका संस्कार लेकर इसका साक्षात करो और वैसा वने अटल विश्वास ही को गुरु, नाम, सिद्धि शक्ति वा निर्वाणी कहते है।

नित प्रति शब्द योग करने से शरीर स्वस्थ चित्त प्रश्न वा बुद्धि तीव्र होती है। अनुभव भक्ति बढ़ती है द्वेष, ईर्ष्या जाते रहते हैं पर उपकार व उदारता की शक्ति प्राप्त हो जाती है। शब्द अभ्यासी अपना और संसार का भला कर जाता है।

—:o:—

अंग्रेजी और हिन्दी भाषा

लेखक—कुवेर नाथ श्रीवास्तव (वलिया)

गाते नीच बढ़ाई पावा, प्रथम शठ ताही नसावा।

स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक व्यक्ति अपना विचार प्रगट करने में स्वतन्त्र है। अत: मैं अपना विचार अंग्रेजी वा हिन्दी भाषा के हेतू स्वतन्त्रता पूर्वक प्रगट कर रहा हूं। समाचार पत्रों में आये दिन हिन्दी भाषा को प्रोतसाहित करके उसका संसारिक भाषा वनाने तथा अंग्रेजी भाषा को भारत में त्याग पत्र देने का लेख पढ़ते हैं। किसी निर्वल को प्रोतसाहित करने का विचार जितना माननीय है। उतना ही धृनित किसी सवाल का निरादर करने में है। भारत के रिषी मुनियों ने अपने आत्म

अनुभव का आविष्कार संस्कृत में किया है वह सर्व श्रेष्ठ है। और संसार इसका लोहा मानता है। उस समय संस्कृत भाषा को मान्यता थी। यद्यपि इस समय संस्कृत भाषा जीवित है। मगर इतनी निर्बल है कि भारत की कोई सहायता नहीं कर पाती। इसकी मान्यता केवल इने गिने ब्राह्मण ही अपनी रोजी रोटी के हेतु करते हैं। जब इसकी मानप्रतिष्ठा समाप्त हो गयी तब इसकी जगह प्रान्तीय भाषाओं ने ले ली और उत्तर प्रदेश को भाषा देव नागरी हो गई। अगर कबीर साहब, तुलसीदास, सूरदास व चन्द अन्य व्यक्तियों ने अपना आत्म अनुभव व विचार गद्य में प्रगट नहीं किया होता तो इसमें कोइ आविष्कार नहीं कहा जाता मगर सबसे बड़ा आविष्कार तो जीवीका उपारजन करने, रहने सहने और अपनी सुरक्षा का है जिससे हिन्दी विद्या मान वंचित है। अन्ग्रेजी भाषा ब्रिटेन की है इसके विद्यावानों ने आत्म अनुभव के अतिरिक्त जीवी का उपारजन रहन सहन व्यापार सुरक्षा खेतीबारी के सामने व हथियारोंका आविष्कार किया और रेल, तार, वायुयान, जलयान, व अन्य २ प्रकार के कला कौशल का आविष्कार करके शक्तिशाली बन गये अपनी सभ्यता व शक्ति के वल से अफ्रीका. आस्ट्रेलिया अमरीका, भारत वा अन्य देशों को अपने अधिकार में कर लियाँ और वहाँ जाकर आवाद होगें कहा जाता था कि ब्रिटिश ज्ञासन में सूर्य अस्त नहीं होता अंग्रेजी किसी के प्रोतसाहित से ससार की भाषा नहीं बनी है वह अपनी शक्ति से श्रेष्ठ भाषा बनी है अंग्रेजों की देखा देखी रूस, जापान, फ्रांस इत्यादि देशों ने भी आविष्कार किया अंग्रेजी कोष में जितने शब्द हैं उतने शब्द संसार के किसी भाषा में नहीं है और हिन्दी में तो सब से कम हैं अन्ग्रेजी में एक शब्द के भाव को प्रगट करने हेतु अनेक शब्द हैं मगर हिन्दी में अनेक भावों को प्रगट करने हेतु एक ही शब्द

है। अंग्रेजी के विद्यामान जो नया आविष्कार करते हैं उसका नया नाम शब्द होता है ईर्ष्या बस हिन्दी के विद्यामान तोड़ फोड़ कर उसका हिन्दी शब्द बनाकर उसकी क्षमता को नष्ट कर देते हैं क्या अच्छा होता अगर अंग्रेजी के नये शब्दों को और उन शब्दों को जो हिन्दी में नहीं हैं। हिन्दी में उनको ज्यों का त्यों रखा जाता जिससे उसकी क्षमता बनी रहती। नाक को हाथ से बजाय सीधे पकड़ने के उसे उलट कर पकड़ने में कौन सी बुद्धिमानी है निर्बल अगर शक्तिशाली से मिला जुला जुला रहता है तो उसकी शक्ति बढ़ जाती है। अगर उनसे द्वेष करता है तो नष्ट हो जाता है। रूस, चीन, जापान वा फ्रांस इत्यादि ने अपनी भाषा में आविष्कार किया है मगर वह लोग अपनी भाषा को संसार की भाषा होने की डींग नहीं मारते भारत ने हिन्दी भाषा में कौन सा आविष्कार किया है हिन्दी का संसार की भाषा प्रचलित करने को कहने का इसका अधिकार है जवाहर लाल नेहरू का यह विचार था कि अंग्रेज भले ही भारत छोड़ दें मगर अंग्रेजी भारत न छोडे मगर गांधी जी का यह विचार हुआ कि अंग्रेज भले ही भारत न छोडें मगर अंग्रेजी भाषा भारत छोड दे। न जाने कोन सा भूत इन्द्रिागांधी के सर सवार है। कि वह अपने पिता के प्रतिकूल गांधी का समर्थन कर रही है। भारतीय अंग्रेजी विद्यामानों का अंग्रेजी का स्वाद अच्छा मालूम हो रहा है। तभी तो वह अंग्रेजी को भारत छोडने को प्रतिकूल हैं वह यही चाहते हैं कि जैसे अंग्रेजी साइन्स विद्यालयों में अनिवार्य हो गया है। वैसे अंग्रेजी भाषा भी अनिवार्य रहे और अंग्रेजी सांइस की शिक्षा के बजाय हिन्दी में देने को अंग्रेजी न दी जाये तो कि अंग्रेजी सांइस की पूरी क्षमता छात्रों में आवे हिन्दी भाषा के समर्थक राजकीय नेता है जो अंग्रेजी के स्वाद से रहित है। और उनके साथी दयानन्द सरस्वती जो

हिन्दी को छोड़कर दूसरी भाषा नहीं मानते थे महापुरुष तथा जनता का वह अधिक भाग है जो अंग्रेजी नहीं जाना, जिनसे राजकीय नेता है जो हिन्दी के महत्वका ढोल बजा रहे हैं। उनका आधार यह भी है कि हिन्दी का लिखना पढ़ना सुगम व सरल है तथा अंग्रेजी का लिखना पढ़ना दुरगम व कठिन है। बकरी का बच्चा चन्द महीनों में जवान हो जाता है उसको लोग मार कर खा जाते हैं। मगर हाथी का बच्चा कई सालों में जवान होता है। जिस के कारण सब जानवरों से बड़ा और शक्तिशाली होता है। गुलाब के काँटे उसके फूल और सुगन्ध को सब फूलों से सुन्दर व सुगन्धित बनाते है वह फूलों का राजा कहा जाता है। दूसरे फूल जिनमें काटाँ नहीं है वह गुलाब से नीचे गिने जाते है। अंग्रेजी भाषा विशाल, शक्तिशाली और लाभदायक है। उसके सीखने और पढ़ने लिखने परिश्रम करना व समय का लगना अनिबार्य है। हिन्दी भाषा सीधी सादी है। इसमें कोई आविष्कार नहीं है। इसके लिखने से कम परिश्रम व कम समय तो लगना ही चाहिये–एक कक्षा दो लड़कों के क्षमता की तुलना कीजिये जिनमें एक अंग्रेजी पढता है और दूसरा हिन्दी पढ़ता है आप अंग्रेजी पढ़ते हुये लड़के की क्षमता व सभ्यता हिन्दी पढ़े हुये लड़के से अधिक पावेग- अंग्रेजी व हिन्दी भाषा की क्षमता में उतना ही अन्तर है जितना सूरज व बिजली के प्रकाश में है– बिजली का प्रकाश सूरज के प्रकाश में लोप हो जाता है। भारतीय पहिले अगर धनुषबाण से लडते थे तो अब उसको छोड़कर एटमबम क्यों प्रयोग कर रहे हैं। अंग्रेज भूल गये उनको चाहता था कि भारत में कार्य करने हेतु हिन्दी का प्रयोग करें और अंग्रेजी की गन्ध यहाँ न आने दें अगर अंग्रेजी का प्रचार वह भारत में नहीं किये होते तो भारत की स्वतन्त्रता दूर की बात थी। अंग्रेजी शिक्षा ने भारत को स्वतन्त्रता प्रदान किया है।

सुख के सिर पत्थर पड़े, सुख ने भुलाया नाम को।
दुख की बलिहारी है, दुख ही ने जपाया नाम को ॥८॥
मेरे दाता दीन और दुखियों की तुझको लाज है।
दीन बन्धो दीन हित, करना ही तेरा काज है ॥९॥
अपनी निन्दा क्या करें, निन्दा के हम कब पात्र हैं।
सच्चे अधिकारी दया के, जग के पापी मात्र हैं ॥१०॥
पापी ही दर्शन दिलाते हैं, तेरा संसार को।
पाप करके वह सुझा, देते हैं भक्ति सार को ॥११॥
द्वन्द्व में हमको फसाया, और पापी कर दिया।
मन का बरतन बासनाओं से, हमारा भर दिया ॥१२॥
सारे पापी तर गये, आई है अब बारी मेरी।
देखता हूँ राह व्याकुलता, से आने की तेरी ॥१३॥
तर गये गणिका अजामिल, मुक्त शिबरी भीलनी।
तर गये सैना सदन तक अरु सुपच चंडाल भी ॥१४॥
मेरी बारी पर बता अब, देर क्यों करने लगा।
इस अधम को तारदे, यह दुख से अब मरने लगा ॥१५॥
ऐ पतित पावन पतित, को ओर दृष्टि हो तेरी।
ऐ तरन तारन नहीं, होती है क्यों चिन्ता मेरी ॥१६॥
राधास्वामी अब दया से, मेरा बेड़ा पार कर।
दुख सहा करता हूँ, निश दिन आके तू उद्धार कर ॥१७॥

—:०:—

विश्वास

तेरी दया का दृढ विश्वास हुआ। चरणों में पड़ा निज दास हुआ
करूँ बीनती दोऊ कर जोरी। अर्ज सुनो राधास्वामी मोरी ॥
संसार से सहज उदास हुआ ॥ तेरी दया ०
सत्त पुरुष तुम सतगुरु दाता। सब जीवों के पितु और माता ॥

ढारस बँधी घट में उजास हुआ ॥ तेरी दया०
दया धार अपना कर लीजे । काल जाल से न्यारा कीजे ॥
तब समझूँगा माया का नाश हुआ ॥ तेरी दया०
सतयुग त्रेता द्वापर बीता । काहु न जानी शब्द की रीता ॥
सब में अज्ञान का बास हुआ ॥ तेरी दया०
कलियुग में स्वामी दया विचारी । परगट करके शब्द पुकारी ॥
विद्या सत ज्ञान का भास हुआ ॥ तेरी दया०
जीव काज स्वामी जग में आये । भवसागर से पार लगाये ॥
तब दुखी जीव सुख रास हुआ । तेरी दया०
तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा । सत्तनाम सतगुरु गति चीन्हा ॥
अनुभव का आप विकाश हुआ ॥ तेरी दया०
जग मग जोत होत उजियारा । गगन सोत पर चन्द्र निहारा ॥
घट ब्रह्मरेन्द्र कैलाश हुआ ॥ तेरी दया०
सेत सिंहासन छवि विराजे । अनहद शब्द गैब धुनि बाजे ॥
हिया उमगा हर्ष हुलास हुआ ॥ तेरी दया०
क्षर अक्षर निःअक्षर पारा । बिनती करे जहाँ दास तुम्हारा ॥
पृथ्वी छुटी गुजर आकाश हुआ ॥ तेरी दया०
लोक अलोक पाऊँ सुख धामा । चरण शरण दीजे विश्रामा ॥
राधास्वामी चरण निवास हुआ ॥ तेरी दया०

आनन्द

घट में गुरु के रूप का, परकाश तारा हो गया ।
मिट गया मन का अँधेरा, अरु उजाला हो गया ॥१॥
प्रीति और परतीत से, विश्वास से साधन किया ।
नाम सच्चा मिल गया, जब वह सहारा हो गया । २॥
भाग क्या अपना सराहूं, बन गया मेरा जनम ।
प्रेम के मन आते ही, जग का दुलरा हो गया ॥३॥

शुभ सूचना

परमपूज्य गुरु महाराज की असीम कृपा से मोदी नगर में परम दयाल मानवता सभा रजिस्टर्ड हो गई है। जिसके अध्यक्ष श्री रामचन्द्र सनेजा जी चुने गये हैं। एव कोषाध्यक्ष श्री शीतला शंकर मिश्रा हैं।

मोदी नगर में श्री सुभाष भाई परम दयाल हजूर महाराज के प्रवचनों को फैलाने हेतु पूर्ण रूप से सलग्न है वे समय २ पर मनुष्य बनो को आर्थिक सहायता देकर हजूर महाराज के प्रवचनों को फैलाने में पूरी सहायता कर रहे हैं। इसके लिये मनुष्य बनो कार्यालय उनका हृदय से आभारी है।

—:०:—

निवेदन

हम अपने ग्राहक भाइयों का हर माह मनुष्य बनो के मुख पृष्ठ के पीछे की तरफ उनको तरफ का वकाया लिखकर अवगत कराते है लेकिन हमारे ग्राहक भाई इस तरफ ध्यान न देकर हमें अपना वार्षिक मूल्य भेजना भूल जाते हैं। जिसकी वजह से पत्रिका को प्रतिवर्ष लगभग २००० रु० का नुकसान उठाना पड़ रहा है। अत: हम अपने ग्राहक भाइयों से निवेदन करते है कि वह अपना वकाया मूल्य शीघ्रता शीघ्र भेजने की कृपा करें।

ताकि मनुष्य बनो आपको और अधिक सामिग्री जुटा कर सन्तों के प्रवचनों का अमृत पान करा सकें हमें आशा है ग्राहक भाई हमारी बातों पर ध्यान अवश्य देगे।

(प्रकाशक)

शुभ समाचार

समस्त अलीगढ़ जनपद निवासियों को यह जानकार हर्ष होगा कि गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी परम सत दयाल हजूर महाराज मानव दयाल जी महाराज दिनांक १३-३-८४ को अलीगढ़ की जनता को अपने प्रवचनों से लाभ पहुचाने हेतु पधार रहे हैं।

वह अलीगढ में मैसर्स गोविला एन्टर प्राइजस वालों के गैस गोदाम पर ठहरेंगे। और वहीं उनके दोनों दिन सतसंग भीं होगें।

बाहर से आने वालो जनता के लिये ठहरने का उचित प्रबन्ध है।

(व्यवस्थापक)

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़। उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १५ अक्टूबर, १९७८

सुधा मीतल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. No. L-ALG—28

पुस्तकें

हमारे यहां

महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक,
स्त्री उपयोगी,
स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी
पुस्तकें तथा 'शाही' और 'मोती'
सिलसिले के उपन्यास तथा
परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज
कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें
मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।

डाक खर्च सब का अलग है।

पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से
भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—
कार्यालय
मनुष्य बनो
शिव भवन, नेवराजनगर,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं० 146

श्री

अ० स० सम्पादक — महेशचन्द्र मीतल

Printed by S. Mittal, Data Dayal Printers, Aligarh